

(३) अलंकार—ध्वन्यात्मक व्यंग्य ।

### में नीर-भरी दुख की बदली

कविता-परिचय—प्रस्तुत गीत रहस्यवादी काव्यधारा से सम्बद्ध भावुकता तथा तन्मयता का प्रतिपादक है। इस काव्यधारा में कवि सीमाहोकर भी असीम से अपना भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। उसके जीवन का क्षण प्रतिक्षण उस व्यापक चेतना को अपने प्राणों में भरकर विश्व जीवन में एकात्मकता अनुभव करता है। प्रकृति तत्त्वों पर चेतना का आरोप, अपनी नश्वरता का विश्वास, किन्तु असीम, अव्यक्त की सत्ता में आस्था तथा उसे पाने के लिए करुणा, तन्मयता तथा समर्पण रहस्यवादी काव्यधारा की बहुचर्चित किन्तु मुख्य विशेषताएँ हैं। विश्व के जड़-चेतन से अपनी भावात्मक प्रवृत्तियों को सम्बद्ध करके इस वर्ग के कवियों ने जिन भाव-चित्रों की सृष्टि की है वे सभी अत्यन्त रोचक, सरस तथा स्वाभाविक हैं। इस गीत में कवयित्री ने नाशवान जीवन को जल से भरपूर बदली के साम्य में उपस्थित करते हुए अपने प्रकृति-प्रेम, दार्शनिक गाम्भीर्य तथा कल्पना वैभूव को व्यक्त किया है।

‘मैं नीर-भरी.....निर्भरिणी मचली !’

शब्दार्थ—स्पन्दन=कम्पन । निस्पन्द=स्थिर । क्रन्दन=विषाद ।  
निर्भरिणी=सरिता ।

प्रसंग—विरहाकुल प्रेयसी की आँखों से अविरल बहने वाली अश्रुधारा, धड़कनों में प्रिय की स्मृति और ओष्ठों पर वेदना की अभिव्यक्ति करता हुआ अतिक्रन्दन देखकर कवयित्री उस पर सजल बदली का आरोप करती हुई, उसका परिचय देती हुई जैसे स्वयं को ही उस करुणापूरित साधिका के रूप में प्रस्तुत करती हुई कहती है ।

व्याख्या—वह जल से परिपूर्ण दुःख की ऐसी बदली है जो निरन्तर अश्रु बरसाती रहती है । उसकी धड़कनों में वह निस्सीम, व्यापक, शुद्ध, स्थिर रूप बस गया, उसके सौन्दर्य तथा आकर्षण से अभिभूत मन विरह में क्रन्दन करता है, जिसे यह दुखी संसार सुनता है, प्रसन्न होता है अथवा सहृदयता के अभाव में केवल हँस देता है । प्रियतम की बाट जोहते हुए नेत्र दीपकों के समान जलते हुए एकटक उसी ओर निहारते रहते हैं, मानो प्रियतम की स्मृति में आँखों से जैसे कोई सरिता ही उद्दाम वेग से मचलकर बह चली हो ।

बादल में सजलता तथा सरसता होने पर भी बिजली की धड़कनें तो होती ही रहती हैं, बादलों में उठने वाली ध्वनि वस्तुतः उसका क्रन्दन ही है किन्तु विश्व तो उसमें केवल आनन्द ही अनुभव करता है । निरन्तर वर्षा होने से जिस प्रकार निर्भर फूट पड़ते हैं उसी प्रकार मन में चिरन्तन वियोगजन्य व्यथा से आँसू तो प्रवाहमान रहते हैं । इस प्रकार वियोगिनी की भावनाओं का सादृश्य बादल में उस रहस्यत्मकता का परिचायक है जिससे हिन्दी साहित्य को प्रेम, सौन्दर्य, कर्मा, दर्शन तथा कल्पना कल्पित काव्य मिला ।

‘मेरा पग-पग.....अंकुर बन निकली !’

शब्दार्थ—दुकूल=वस्त्र, दुपट्टा । मलय=चंदन, सुगन्धित । बयार=  
वायु ।

प्रसंग—वियोग में अपने को प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य तथा बहुविध रूपों से निर्मित अथवा प्रेरित मानकर ससीम प्रेमिका उस असीम की छाया-प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए कहती है ।

व्याख्या—उसके प्रत्येक चरण में प्रगति का संगीत भरा हुआ है, श्वास-प्रश्वास से स्वप्न सौन्दर्य को सजाने वाला अलौकिक सुगन्धियुक्त पराग बिखरता है । आकाश के नये इन्द्रधनुषी रंग प्रेमिका का आँचल निर्माण करते हैं, सुगन्धित वायु भी उसी की छाया में पली है । आकाश में बादल छा जाने पर समस्त वातावरण संगीत, आनन्द, मस्ती तथा नवीन उत्साह और सौन्दर्य से आपूर्ण हो जाता है, वायु भी सुगन्धित होकर विश्व को सुवासित करती है ।



ऐसे समय में सूक्ष्म ब्रह्म की उपासिका महादेवी जी ने अपने को इतना सीमित किन्तु आदर्श तथा कर्तव्य की दृष्टि से व्यापक बना लिया है कि उन्हें अपने व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया ही समस्त प्रकृति पर आच्छादित दिखाई पड़ती है। इससे कवयित्री की रहस्यात्मकता, सरसता तथा सौन्दर्य विधायिनी शक्ति का पूर्ण उन्मेष दिखाई पड़ता है।

‘मैं क्षितिज-भृकुटि.....अन्त खिली !’

शब्दार्थ—भृकुटि=भौंहें। सुधि=स्मृति। आगम=आना। सिहरन=कम्पन।

प्रसंग—दुःख, वेदना तथा वियोगजन्य आँसुओं को ही अपना स्वरूप समझकर, वियोगिनी बदली-सी बनकर विश्व जीवन में व्याप्त हो जाती है। हर समय प्रतीक्षा में आँखें बिछाये, पलकों में उसके सौन्दर्य की कल्पना तथा स्मृति-जन्य आकुलता से युक्त वियोगिनी अपना परिचय देते हुए कहती है।

व्याख्या—वह क्षितिज रूपी भृकुटि पर वेदना, उदासी तथा निराशा की मलिनता लेकर घिर आती है, चिन्ता का बोझ हर समय आँखों पर उसी प्रकार रहता है, जैसे आकाश में बादल घिरकर अपनी धूमिलता में भुंक जाते हैं। यह करुणापूर्ण बदली विश्व के नीरस, उदास तथा अभावग्रस्त जीवन में सरसता की वर्षा करती है। जिस प्रकार शुष्क धरती पर बरसकर जल सरसता प्रदान करता है तो तृण, तरु-पल्लवों पर जीवन की नवीनता के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं उसी प्रकार यह करुणा विश्व जीवन में नवीन भावनाओं का उन्मेष करती है। यह बदली अचानक आती है। इसके आगमन का मार्ग अथवा लौटने वाले पदचिह्नों का भी कुछ ज्ञान नहीं होता, बदली के आगमन की स्मृति केवल संसार में संचरण करती हुई सिहरन की मधुरता में ही होती है। जिस प्रकार जीवन के आगमन की दिशा का किसी को ज्ञान नहीं होता और न ही उसके प्रयाण के चिह्न ही मिलते हैं, केवल उसके करुणापूर्ण भावों अथवा कार्यों की स्मृति ही शेष रह जाती है उसी प्रकार वियोगिनी साधिका की संवेदनायें ही सृष्टि को भावात्मकता तथा करुणेश को पाने के लिए प्रेरणाएँ प्रदान करती रहती हैं।

‘विस्तृत नभ का.....सिट आज चली।’

शब्दार्थ—विस्तृत=विशाल। नभ=आकाश।

प्रसंग—एकाकी, अभावग्रस्त तथा वियोग में ही जीवन व्यतीत करते हुए विरहाकुल आत्मा अपनी क्षणभंगुरता तथा असमर्थता का आभास पा लेती है। चिरन्तन विरह-साधना में तल्लीन रहते हुए जिस एकाकी भाव की अनुभूति होती है उसे अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कहती है।

व्याख्या—इस विशाल, विस्तृत तथा विराट् संसार की समस्त वैभव,

प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी

२१७

विलास, सुख तथा आनन्द प्रदान करने वाली सामग्रियों में उसका अपना कुछ भी नहीं। किसी भी पदार्थ के साथ अपनत्व का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। बदली का क्या अस्तित्व, उसका परिचय अथवा इतिहास तो केवल इतना ही है कि वह कल उमड़ी थी और आज समाप्त हो गई है। जीवात्मा संसार में आती है, कुछ दिन व्यतीत करके चली जाती है। उसका कुछ भी तो अस्तित्व शेष नहीं रहता। जीव जिन पदार्थों से अपनी घनिष्टता स्थापित करना चाहता है, वे सभी तत्त्व उसका साथ नहीं देते। जीव स्वयं ही विविध अनुभूतियों का उपभोग करते-करते अन्त में यहाँ से चल देता है। शेष रह जाता है उसे कार्यकलाप का प्रभाव, जो समयान्तर पर स्मृतियों को भी निःशेष कर देता है।

जाग जाग सकेजि-२ . . .